"काव्य हेतुओं का स्वरूप"

'हेतु' का शाब्दिक अर्थ है 'कारण'। अतः 'काव्य हेतु' का अर्थ हुआ काव्य की उत्पत्ति का कारण। भारतीय काव्यशास्त्र में काव्य हेतुओं पर विद्वानों ने पर्याप्त विचार-विमर्श किया है तथा तीन काव्य हेतु-(i) प्रतिभा, (ii) व्युत्पत्ति (निपुणता) एवं (iii) अभ्यास माने हैं। इनमें प्रतिभा सर्वप्रमुख काव्य हेतु है, जिसे काव्यत्व का बीज माना गया है। 'प्रतिभा' के अभाव में कोई व्यक्ति काव्य रचना नहीं कर सकता।

*प्रतिभा —

'प्रतिभा' वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति को काव्य रचना में समर्थ बनाती है। राजशेखर ने प्रतिभा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है— "या शक्तिः केवल काव्य हेतुः।" आचार्य भट्टतीति के मतानुसार, "प्रतिभा उस शक्ति का नाम है जो नित नवीन रसानुकूल विचार उत्पन्न करती है"— "प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता।" आचार्य अभिनव गुप्त ने 'प्रतिभा' को परिभाषित करते हुए लिखा है—

"प्रतिभा अपूर्व वस्तु निर्माण क्षमा प्रज्ञा।"

अर्थात् 'प्रतिभा' प्रज्ञा का वह रूप है जिसमें अपूर्व की सृष्टि करने की क्षमता होती है। कवि इसी के बल पर काव्य-सर्जना में समर्थ होता है। आचार्य वामन का मत है कि प्रतिभा जन्म से प्राप्त संस्कार है, जिसके बिना काव्य रचना सम्भव

नहीं है। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक ने प्रतिभा उस शक्ति को माना है, जो शब्द और अर्थ में अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि करती है। नाना प्रकार के अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य आदि का विधान करती है।

"प्रतिभा प्रथमोद्भेद समये यत्न वक्रता।
शब्दाभिधेय योरन्तः स्फुरतीव विभाव्यते॥"

आचार्य मम्मट प्रतिभा को 'शक्ति' कहते हैं और उसे काव्य का बीज स्वीकार करते हैं, जिसके बिना काव्य की रचना असम्भव है।

"शक्तिः कवित्व बीज रूपः संस्कार विशेषः।"

अर्थात् "शक्ति (प्रतिभा) कवित्व का बीजरूप संस्कार विशेष है। जिसके बिना काव्य-सृजन नहीं हो सकता।"

उपर्युक्त आचार्यों द्वारा प्रतिभा का जो स्वरूप स्पष्ट किया गया है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रतिभा काव्य का मूल हेतु है। यह ईश्वर प्रदत्त शक्ति है तथा नवनवोन्मेष शालिनी प्रज्ञा है। प्रतिभा के बल पर ही कवि अपूर्व शब्दों, अपूर्व भावों, अलंकारों, उक्ति वैचित्र्य आदि का विधान करता है। डॉ० नगेन्द्र ने प्रतिभा को असाधारण कोटि की मेधा मानते हुए कहा है कि— "प्रतिभा को नीरस और साधारण वातावरण अच्छे नहीं लगते हैं, वह असाधारणता में खुलकर खेलती है।"

* व्युत्पत्ति (निपुणता) ——

'व्युत्पत्ति' का शाब्दिक अर्थ है निपुणता, पाण्डित्य या विज्ञता। ज्ञान की

उपलब्धि को भी व्युत्पत्ति कहा गया है। यह ज्ञानोपलब्धि शास्त्रों के अध्ययन और लोक व्यवहार के अवेक्षण से होती है। विद्वानों का मानना है कि साहित्य के गहन-चिन्तन-मनन से कवि की उक्ति में सौन्दर्य का समावेश हो जाता है और उसकी रचना सुव्यवस्थित हो जाती है।

आचार्य रूद्रट का मत है कि छन्द, व्याकरण, कला, पद और पदार्थ के उचित-अनुचित का सम्यक् ज्ञान ही व्युत्पत्ति कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने व्युत्पत्ति को 'निपुणता' नाम दिया है। यह निपुणता चराचर जगत के निरीक्षण और काव्य आदि के अध्ययन से प्राप्त होती है। राजशेखर के अनुसार —

"उचितानुचित विवेको व्युत्पत्तिः।"

अर्थात् उचित-अनुचित का विवेक ही व्युत्पत्ति है।

संस्कृत के आचार्यों ने व्युत्पत्ति को काव्य हेतुओं में प्रमुख स्थान दिया है। व्युत्पत्ति के बल पर ही कोई व्यक्ति यह निर्णय कर पाता है कि किस शब्द का प्रयोग उचित होगा और किस शब्द का प्रयोग अनुचित। व्युत्पत्ति दो प्रकार की होती है — (i) शास्त्रीय व्युत्पत्ति और (ii) लौकिक व्युत्पत्ति। शास्त्रीय व्युत्पत्ति शास्त्रों के अध्ययन से तथा लौकिक व्युत्पत्ति लोक के निरीक्षण से उत्पन्न होती है।

* अभ्यास —

काव्य निर्माण का तीसरा हेतु

अभ्यास है। आचार्य भामह का मानना है कि शब्दार्थ के स्वरूप का ज्ञान करके यत्न अभ्यास द्वारा उसकी उपासना करनी चाहिए, साथ ही अन्य कवियों के कृतित्व का अध्ययन भी करना चाहिए। जिससे अभ्यास नित्यप्रति वृद्ध होता जाए। आचार्य वामन के अनुसार,—

"अभ्यासोहि कर्मसु कौशलं भावहिति।"

अर्थात् अभ्यास के द्वारा ही कवि कर्म में कुशलता प्राप्त की जा सकती है।

आचार्य दण्डी ने अभ्यास को ही काव्य का प्रमुख हेतु माना है। उनका यहाँ तक मानना है कि प्रतिभा और व्युत्पत्ति के अभाव में केवल अभ्यास से ही काव्य रचना में कोई कुशल हो सकता है। जो कवि कीर्ति चाहते हैं उन्हें आलस्य को त्यागकर सरस्वती की उपासना करनी चाहिए और निरन्तर कवि कर्म का अभ्यास करते रहना चाहिए। अभ्यास के महत्व को निम्न दोहे में स्वीकार किया गया है—

"करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें सिल पर परत निसान॥"

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास ही प्रमुख काव्य हेतु हैं। वस्तुतः ये तीनों समन्वित रूप में ही काव्य के हेतु हैं, जिन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता।